विचार वक्तव्य
जगदलपुर, बुधवार 15 सितम्बर 2021
www.dandakaranyasamachar.com

अमृत वाणी

ईश्वर का मानव से कोमल संलाप ही अन्तःकरण है।

– यंग

जागरुकता अभियानों के निहितार्थ

हमारे देश प्रदेश में वर्ष भर कोई न कोई जागरुकता अभियान अवश्य चलता रहता है। कोई जागरुकता अभियान पूर्व निर्धारित दिन या समयावधि के दौरान चलाया जाता है तो कोई वर्ष में कभी भी या बार बार आयोजित किया जाता है और कोई अभियान क्षेत्र विशेष की आवश्यकता के अनुसार भी चलाया जाता है ताकि लोग उस विषय के महत्व को समझे एवं तदनुसार स्वयं में सतर्कता और सुरक्षात्मक भवना विकसित कर सके।

वर्तमान में देशभर में चारों ओर बार बार कोरोना संक्रमण से बचने के लिए जिस गाइड लाइन के पालन की समझाइश दी जा रही है वो वर्तमान में संभवतः सबसे महत्वपूर्ण जागरुकता अभियानों में से एक है क्योंकि लोग अपने आंखों के सामने कोरोना संक्रमण की विभीषिका को देखकर या उसका कहर सहने के बाद भी आवश्यक सतर्कता नही बरत रहे है।

वस्तुतः सारे अभियानों के पीछे का उद्देश्य समान रुप में महत्वपूर्ण है। लोग कई बार अपनी नासमझी हो या फिर आकस्मिक गलत निर्णय अथवा क्षणिक आवेश या जोश में आकर ऐसे कदम उठा लेते है जो उनके और उनके परिवार पर ऐसा भयावह कहर ढा देता है जिसकी भरपाई कभी नही हो पाती। सच कहा जाय तो सारे अभियानों का मूल उद्देश्य लोगों को स्वतः आहूत ऐसे विपदाओं से बचाने का प्रयास ही है।

हाल ही में संचालित आत्महत्या रोकथाम अभियान के माध्यम से लोगों को वे तमाम समझाइश सलाह और जानकारियां ही दी जा रही है कि हर तरह की समस्याएं और परेशानियो के निवारण का मार्ग तलाशना संभव है। बस संयम के साथ उचित तौर तरीका और माध्यम अपनाना चाहिए ताकि अपनी सकारात्मक सोच के साथ दूसरे माध्यमों के सलाह मशविरा का लाभ काम आ सके। आनन फानन में आत्महत्या कर लेना ही समाधान नही है।

उसी तरह यातायात विभाग थोड़े थोड़े दिनों के अंतराल में लोगों को तरह तरह से यातायात नियमों के प्रति जागरुक करने का प्रयास करता है ताकि सड़कों पर हर दिन हो रहे एक से बढ़कर एक भयावह दुर्घटनाएं और उसके कारण जाने वाली मासूम लोगों की जान बचाई जा सके। नियम तो जीवन की अनिवार्यता है। हर क्षेत्र में उसका पालन आवश्यक होता है ताकि जीवन सुचारु रुप से चल सके। फिर सड़क पर उसे अनदेखा कर हम अनावश्यक रुप से जोखिम क्यों लेते है। एक दुर्घटना केवल उसके शिकार लोगों को गंवाना ही नही बल्कि उससे जुड़े अनेकों के जीवन पर कहर ढा देता है। फिर भी हम समझते क्यों नही है। यातायात विभाग निरंतर कोशिश करता है। समझना तो लोगों को ही है।

देश के निज गौरव की पहचान हिंदी

हिंदी देश के निज गौरव की पहचान रही है। यही वो भाषा हैए जिसने स्वतंत्रता आंदोलन के समय एक क्रांतिकारी भूमिका अदा की थी। मुंशी प्रेमचंद्र माखनलाल चतुर्वेदीए मैथिलीशरण गुप्त भवानिप्रसाद मिश्रए रामधारी सिंह दिनकर जैसे महान साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के साथ लोगों को जागरूक किया। ष् कुछ मसलक कम पड़ते होंगे जब महाकाल की माला मेंए मां मांग रही होगी आहुति जब स्वतंत्रता की ज्वाला मेंए पल भर भी पड़ असमंजस में पथ भूल न जाना पथिक कहींष्ए शिव मंगल सिंह सुमन की यह रचना युवाओं से भारत माता के लिए सीधे सीधे बलिदान का आह्वान कर रही है। ऐसी सैंकड़ों रचनाओं ने लोगों को स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। यही वो भाषा है जिसे देश के अधिकतर लोग बोलते हैए समझते हैं। फिर भी देश की स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी को राजभाषा बनने के लिए अपने ही देश में संघर्ष करना पड़ा।

14 सितंबर 1949 को इसे राजभाषा के पद पर तो आसीन कर दिया परंतु वह सम्मान जिसकी यह अधिकारी है वह आज तक प्राप्त नहीं हो सका। उस समय अंग्रेजी को 15 वर्ष तक राजकीय कार्यों में संघ की भाषा बनी रहने की छूट मिली थी। परंतु वह छूट 72 वर्ष बीत जाने पर भी बनी हुई है। परिणाम यह हुआ कि आज मध्यम वर्ग अंग्रेजी के पीछे दीवाना हो गया है। बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा उसकी मातृभाषा में होनी चाहिए ऐसे विचार महात्मा गांधी जी ने उद्धृत किए थे। परंतु आज माता पिता बच्चों को पैदा होते ही अंग्रेज बनाने पर तुले हुए हैं। बच्चा यदि पंखे की ओर संकेत करके उसे पंखा बोल देता है तो भी उसकी माता उसे कहती हैए ष्नहीं बेटा यह पंखा नहीं फैन है।ष् इसका परिणाम यह होता है कि न तो बच्चा सही ढंग से अंग्रेजी सीख पाता है और न ही वह हिंदी का ज्ञान प्राप्त कर पाता है। अंग्रेजी की ओर यह आकर्षण उन्हें अपनी मातृभाषा से दूर और बहुत दूर ले जाता है। हिंदी बोलने में उन्हें लज्जा का अनुभव होने लगता है। माता पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे डॉक्टर या इंजीनियर बनें। इसके लिए उन्हें विज्ञान की पढ़ाई करनी पड़ेगी। अधिकतर लोगों में यह बात घर कर गई है कि विज्ञान की पढ़ाई के लिए हिंदी में कठिन शब्द हैं जबकि अंग्रेजी में वे शब्द सरल होते हैं। यह केवल भ्रम है। जो शब्द अधिक प्रचलन में रहते हैं वे सरल लगने लगते हैं। जिनका प्रचलन कम होता है वे प्रायः कठिन लगते हैं। विज्ञान के शब्दों के विषय में भी यही कहा जा सकता है। वरना एक अपूर्ण और अवैज्ञानिक भाषा हिंदी जैसी पूर्ण भाषा पर कैसे भारी पड़ सकती हैष् कैसे विश्व की भाषाओं में प्रथम स्थान पर अधिकार जमाए बैठी हैष्

वर्ष में केवल एक दिनए एक सप्ताह या एक पखवाड़ा मना लेने भर से हिंदी का कल्याण होने वाला नहीं। हिंदी पर चिंता तो सभी प्रकट करते हैंए परंतु यह चिंता केवल सितंबर के महीने में ही क्यों प्रकट होती हैष् अच्छा हो कि हिंदी के लिए सभी पूरे वर्ष चिंतित रहें। यह एक विडंबना ही है कि कोई व्यक्ति पत्र तो हिंदी में लिखता है परंतु उस पर पाने वाले का पता अंग्रेजी मेंए जैसे कि हमारे देश के डाकियों को हिंदी न आती हो। हम यदि सच में ही चाहते हैं कि हिंदी को उचित सम्मान मिले तो हमें अपने व्यवहार में अधिक से अधिक हिंदी को सम्मिलित करना होगा। ऐसा नहीं है कि हिंदी को बोलने या समझने वालों की संख्या कम है। पिछले दो दशक में इस संख्या में अच्छी खासी वृद्धि हुई है। आज हिंदी संसार की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। इस कार्य में हिंदी समाचार पत्रों का उल्लेखनीय योगदान है। देश विदेश निकलने वाले हिंदी समाचार पत्रों ने हिंदी को लोकप्रिय बनाया है। टेलीविजन और इंटरनेट माध्यमों ने भी हिंदी को लोकप्रिय बनाने में अच्छा योगदान दिया है।

कुछ लोग सोचते हैं कि हिंदी में अन्य दूसरी भाषाओं से आए शब्दों का प्रयोग न किया जाए। कोई भी भाषा तब तक समृद्ध भाषा नहीं बन सकती जब तक कि वह अपने शब्दकोश में अन्य शब्दों को ग्रहण करने की क्षमता नहीं रखती। विश्व की सभी भाषाएं दूसरी भाषाओं से शब्दों को ग्रहण करती हैं। लेकिन यदि हिंदी में उस शब्द का सही विकल्प उपलब्ध है तो वरीयता उसी विकल्प को मिलनी चाहिए।

14 सितंबर को हमें एक संकल्प दिवस के रूप में मनाना चाहिए कि जहां तक संभव हो हम अपने सभी कार्य हिंदी में ही करेंगे जब तक कि अन्य भाषा में कार्य करने की अनिवार्यता न हो।

बलदेव राज भारतीय
(ये लेखक के अपने विचार हैं)

अपने ही घर में प्रताड़ित है बुजुर्ग

हमारे देश में बुजुर्गों को अपने ही घर में प्रताड़ित होने के समाचार निश्चय ही दिल दहलाने वाले है। आश्चर्य की बात तो यह है इन्हें प्रताड़ित करने वाले कोई दूसरे नहीं अपने ही है। इनमें लाखों बुजुर्गों ने अदालतों में अपने ही लोगों के खिलाफन्याय की गुहार की है। ये बुजुर्ग अपनी बची खुची जिंदगी बिना - विघ्न बाधा परिवारजनों के साथ काटना चाहते है।

नेशनल ज्युडिशियल डेटा ग्रिड के अनुसार देश में बड़ी संख्या में ऐसे बुजुर्ग हैं जो उम्र के अंतिम पड़ाव में कानूनी लड़ाई लड़ रहे हैं। वरिष्ठ नागरिकों के 25.02 लाख केस लंबित हैं। इनमें 18.73 लाख सिविल केस और 6.28 लाख आपराधिक मामले हैं। तीन लाख केस तो ऐसे हैं जिसमें बुजुर्ग गुजारा भत्ता पाने, अपने ही घर में रहने और बच्चों द्वारा मारपीट के खिलाफसंरक्षण के लिए कोर्ट जाने को मजबूर हुए हैं। देश की राजधानी दिल्ली में 10 साल से बुजुर्गों के 200 से अधिक केस निःशुल्क लड़ चुके वकील एनके सिंह भदौरिया कहते हैं कि अदालतों से बुजुर्गों को सम्मान से जीने का हक मिलता है। ज्यादातर मामलों में कोर्ट की फटकार पर दो से तीन सुनवाई में सकारात्मक परिणाम मिल जाते हैं। पिछले कुछ सालों में ऐसे केसों में काफी इजाफा हुआ है।

सीनियर सिटीजन एक्ट 2007 बुजुर्गों को दो विशेष अधिकार देता है। पहला-अगर संतान गुजर-बसर के लिए खर्च नहीं देते हैं तो बुजुर्ग कानूनन उनसे प्रतिमाह भत्ता लेने के लिए कोर्ट जा सकते हैं। दूसरा-बच्चे बुजुर्गों को घर से नहीं निकाल सकते हैं। जबकि बुजुर्गों को यह अधिकार है कि वे परेशान करने पर बालिग संतान को घर छोड़ने के लिए बाध्य कर सकते हैं। इसके लिए बुजुर्ग को एसडीएम से शिकायत करनी होगी या कोर्ट जाना होगा।

राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय के हालिया जारी आंकड़ों के मुताबिक देश में साल 2021 में बुजुर्गों की संख्या 13.8 करोड़ पर पहुंच गयी है। इनमें 6.7 करोड़ पुरुष और 7.1 करोड़ महिलाएं शामिल हैं। बुजुर्गों की आबादी बढ़ने की वजह मृत्यु दर में कमी आना बताई गई है। इस अध्ययन में 60 वर्ष या उससे अधिक उम्र वाले लोगों को बुजुर्ग माना गया है। सांख्यिकी अध्ययन में कहा गया है कि 2011 में भारत में बुजुर्गों की आबादी 10.38 करोड़ थी, जिसमें 5.28 करोड़ पुरुष और 5.11 करोड़ महिलएं शामिल थीं। वही साल 2031 में बुजुर्गों की संख्या 19.38 करोड़ पर पहुंचने का अनुमान है। बुजुर्गों की बढ़ती आबादी के मधे नज़र यह देखना भी जरुरी है की बुजुर्ग आज किस स्थिति में अपना जीवन यापन कर रहे है। बुजुर्ग देश और समाज के लिए एक समस्या है या गौरव है। बुजुर्गों की बढ़ती संख्या देखकर खुशी होती है की व्यक्ति की औसत आयु में वृद्धि हो रही है मगर बुजुर्गों की उपेक्षा को देखकर दुःख भी होता है। हर एक को याद रखना चाहिए की बुढ़ापा एक दिन सब को आएगा। जिस दिन यह सच्चाई हम स्वीकार कर लेंगे उस दिन समाज बुजुर्गों की इज्जत और सम्मान करना सीख लेंगा।

विश्व में बुजुर्गों की संख्या लगभग 60 करोड़ है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या कोष की एक रिपोर्ट के मुताबिक, भारत में प्रत्येक पांच में से एक बुजुर्ग अकेले या अपनी पत्नी के साथ जीवन व्यतीत कर रहा है। यानी वह परिवार नामक संस्था से अलग रहने को विवश है। ऐसे बुजुर्गों में महिलाओं की संख्या ज्यादा है। अशिक्षित बुजुर्गों की हालत और भी ज्यादा दयनीय है। अधिकतर बुजुर्ग डिप्रेशन, आर्थराइटिस, डायबिटीज एवं आंख संबंधी बीमारियों से ग्रस्त हैं और महीने में औसतन 15 दिन बीमार रहते हैं। सबसे ज्यादा परेशानी उन वरिष्ठ नागरिकों को होती है, जिनके पास आय का कोई स्रोत नहीं है। हेल्पेज इंडिया द्वारा जारी एक रिपोर्ट बताती है कि देश के लगभग 10 करोड़ वरिष्ठ नागरिकों में से पांच करोड़ से भी ज्यादा बुजुर्ग आए दिन भूखे पेट सोते हैं। देश की कुल आबादी का आठ फीसदी हिस्सा अपने जीवन की अंतिम वेला में सिर्फ भूख नहीं, बल्कि कई तरह की समस्याओं का शिकार है।

बाल मुकुन्द ओझा
(ये लेखक के अपने विचार हैं)

इक्कीसवीं शताब्दी में आतंकी सरकार!

अफगानिस्तान का घटनाक्रम किसी पीरियड फिल्म जैसा ज्यादा लगता है। जिस इक्कीसवीं शताब्दी को ज्ञान की शताब्दी बताया जा रहा था, उसमें बर्बरता के लिए बदनाम हथियारबंद आतंकी समूह किसी देश की सत्ता पर कब्जा कर लेंगे और विश्व समुदाय मूकदर्शक बना देखता रहेगा–इसकी कल्पना भी अगस्त, 2021 से पहले मुश्किल थी। यह संभवतः विश्व में किसी देश की पहली ऐसी सरकार होगी, जिसमें करोड़ों-अरबों के घोषित इनामी अंतर्राष्ट्रीय आतंकी सत्ता के केंद्र में विराजमान होंगे। सिद्धांततः यह माना जा सकता है कि किसी भी देश के नागरिकों को अपनी सरकार और दशा-दिशा चुनने का अधिकार है। इसके बावजूद खुद को दुनिया का दारोगा समझने वाले कुछ स्वयंभू देश लोकतंत्र की रक्षा के नाम पर दूसरे देशों में मनमानी घुसपैठ करते रहे हैं, लेकिन अब जबकि लगभग 80 हजार हथियारबंद आतंकियों ने अधिसंख्यक अफगानिस्तानी आबादी की इच्छाओं का गला घोंटते हुए देश की सत्ता पर ही कब्जा कर लिया है तो प्रतिक्रियाएं देने में भी बेहद सावधानी बरती जा रही है।

इक्कीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक की शुरुआत में ही जो अफगानिस्तान वापस मध्ययुगीन बर्बर सत्ता की कैद में जाता दिखायी पड़ रहा है, उसके लिए एकध्रुवीय विश्व का स्वयंभू दारोगा अमेरिका भी कम जिम्मेदार नहीं है। दो दशक पहले, विश्व जनमत को धता बता कर, आतंक के खात्मे के नाम पर अमेरिका और मित्र देशों ने अफगानिस्तान पर हमला बोला था, लेकिन वहां से उसकी बेआबरू विदाई के बाद जो तस्वीर उभरी है, वह पहले से कम भयावह तो हरगिज नहीं है। तब भी वहां तालिबान के बैनर तले आतंकवादियों की ही सरकार थी और अब जो अंतरिम सरकार बनी है, उसमें भी आतंकियों की ही भरमार है। विश्व के सबसे पुराने लोकतंत्र अमेरिका के हाउस ऑफ रिप्रेजेंटेटिव्ज़ की रिपब्लिकन स्टडी कमेटी के ही शब्दों में आज अफगानिस्तान में आतंकवादियों की, आतंकवादियों द्वारा, आतंकवादियों के लिए सरकार है, पर इसके लिए जिम्मेदार कौन है? यह अब खुला रहस्य है कि सोवियत संघ के साथ लंबे चले शीत युद्ध के दौरान अफगानिस्तान में सोवियत समर्थित सरकार के विरुद्ध अमेरिका ने ही अल कायदा समेत अनेक आतंकी गुटों को जन्म दिया और उनका पालन-पोषण भी किया। पाकिस्तान इस काम में उसका मददगार रहा। यह अलग बात है कि अंततः अफगानिस्तान से सोवियत संघ की विदाई और उसकी समर्थित सरकार के पतन के बाद वे ही आतंकी गुट अमेरिका के लिए भस्मासुर साबित हुए।

विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र और असंदिग्ध धर्मनिरपेक्ष साख वाला भारत अस्सी के दशक से ही विश्व समुदाय को आतंकवाद, खासकर कुछ देशों द्वारा प्रायोजित मजहबी आतंकवाद के विरुद्ध आगाह करते हुए अंकुश लगाने के लिए ठोस कदम उठाने का आह्वान करता रहा, लेकिन दुनिया के दारोगा को आतंक की तपिश 11 सितंबर, 2001 को न्यूयार्क में ट्विन टावर्स पर आतंकी हमले के बाद ही महसूस हुई। तभी उसने खुद पर आतंकी हमला करने वाले हमलावरों और उनके मददगारों के खात्मे के लिए अफगानिस्तान पर हमला बोला, जहां तब उन्हीं तालिबान का राज था, जो अमेरिका-पाकिस्तान की साझा आतंकी नर्सरी की देन थे। उसके बावजूद पाकिस्तान कई वर्षों तक अमेरिका को भी डबल क्रॉस करता रहा। एक ओर वह आतंकवाद के विरुद्ध लड़ाई में सहयोग की भारी-भरकम कीमत अमेरिका से वसूलता रहा तो दूसरी ओर लादेन समेत तमाम आतंकी सरगनाओं को पनाह भी देता रहा। पाकिस्तान के इस दोगलेपन का पर्दाफाश तब हुआ, जब अमेरिका ने वहां एबटाबाद में रह रहे लादेन को एक खुफिया ऑपरेशन में मार गिराया। उसके बाद ही अमेरिका-पाकिस्तान के रिश्तों में खिंचाव आना शुरू हुआ। राजनीति की तरह राजनय में भी कोई स्थायी मित्र या शत्रु नहीं होता। कभी अफगानिस्तान में सोवियत संघ की मौजूदगी के विरुद्ध अमेरिका ने पाकिस्तान का इस्तेमाल किया था तो बदलते परिदृश्य में विघटित सोवियत संघ का रूस तथा चीन, अमेरिका के विरुद्ध पाकिस्तान के नये दोस्त बन गये।

शुरू में पाकिस्तान के दोगलेपन और फिर खुलकर सामने आ जाने के बाद अमेरिका के लिए अफगानिस्तान ऐसा चक्रव्यूह बन गया था, जिससे साख बचा कर निकल पाना भी आसान नहीं था। आतंकियों की संरक्षक तालिबानी अफगानिस्तान सरकार को सबक सिखाने का जॉर्ज बुश का दंभ पिछले दो दशक में राष्ट्रपतियों और खुद अमेरिका को कितना महंगा पड़ा–इसका आकलन करने में भी लंबा समय लगेगा। व्यापारी बुद्धि के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप को समझ आ गया था कि अफगानिस्तान से सेना समेत निकल आने में ही भलाई है। ऐतिहासिक नाटकीय चुनाव में ट्रंप के सत्ता से बेदखल हो जाने के बाद नये राष्ट्रपति बाइडेन को भी यही बेहतर विकल्प लगा कि जितनी जल्दी हो, अपना दामन बचा कर अफगानिस्तान से निकल आया जाये। बेशक देर-सवेर अमेरिका को तो निकलना ही था, लेकिन इसके लिए जिस तरह आतंकी तालिबान में ही अच्छे-बुरे के भेद का छलावा अफगानिस्तान समेत विश्व समुदाय से किया गया, उसकी कीमत आज बदनसीब अफगान चुका रहे हैं तो कल पड़ोसी देशों समेत विश्व समुदाय को भी शांति-सभ्यता-मानवता को दरपेश खतरे के रूप में चुकानी ही पड़ेगी। अफगानिस्तान अपनी बहुलता और विविधता वाली कबीलाई संस्कृति के लिए जाना जाता रहा है, लेकिन पाकिस्तान की बदनाम खुफिया एजेंसी आईएसआई की सरपरस्ती में आतंकी गुटों में सत्ता की बंदरबांट के बाद अब अंतरिम सरकार के नाम पर जो 33 बदनाम चेहरे काबुल में सत्ता पर काबिज हुए हैं, उनमें न तो सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व है और न ही आधी आबादी यानी महिलाओं का।

सरकार के गठन की कवायद के बीच तालिबान आश्वस्त कर रहे थे कि महिलाओं समेत किसी भी वर्ग को आशंकित होने की जरूरत नहीं है, सभी की सत्ता में भागीदारी होगी, लेकिन अब नकाब उतर गया है। पिछले कुछ दशकों से अफगानिस्तान जिन अनिश्चितताओं और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों से गुजरा है, उसमें खासकर महिलाओं का जीवन के हर क्षेत्र में हासिल मुकाम काबिले तारीफ ही कहा जायेगा, लेकिन अब उन उजालों को फिर अंधेरों में कैद करने का फरमान जारी हो गया है। बात सिर्फ स्कूल-कॉलेज में लड़के-लड़कियों की अलग-अलग कक्षाओं या उनके बीच परदे तक सीमित नहीं रहने वाली। नौकरियों से लेकर खेल के मैदान तक महिलाओं के लिए बंदे होने का खतरा मंडरा रहा है, क्योंकि अफगानिस्तान के स्वयंभू शासकों ने महिलाओं का काम सिर्फ बच्चे पैदा करना बताकर अपनी मध्ययुगीन मानसिकता उजागर कर दी है। ध्यान रहे कि अब हम जिस वैश्विक गांव वाली अवधारणा में रह रहे हैं, उसमें यह मध्ययुगीन बर्बरता सिर्फ अफगानिस्तान की सीमाओं तक सीमित नहीं रहेगी। इसलिए भी कि अंतरिम सरकार के गठन में ही नापाक पाकिस्तान की दखल से साफ हो गया है कि तालिबान का एजेंडा कौन तय करने वाला है। पाकिस्तान के तानाशाह जनरल परवेज मुशर्रफ ने तो आतंकवाद को अपने देश की सरकारी नीति ही बताया था, पर अफगानिस्तान में तो बाकायदा आतंकवादियों की सरकार ही बन गयी है। कश्मीर समेत कहीं भी मुस्लिम हितों के नये स्वयंभू प्रवक्ताओं ने अपने दोस्त और सबसे भरोसेमंद साझीदार का संकेत भी दे ही दिया है। तब जाहिर है कि शांति-सभ्यता-मानवता में विश्वास रखने वालों से देर-सवेर टकराव होगा ही। इसलिए किसी गलतफहमी-खुशफहमी में समय बर्बाद करने के बजाय सही सोच वालों को इस आसन्न खतरे से निपटने के लिए समन्वित रणनीति बनानी चाहिए तथा अफगानिस्तान में मानवाधिकारों की रक्षा के लिए और दमन के विरुद्ध सामूहिक आवाज भी उठानी चाहिए।

राजकुमार सिंह
(ये लेखक के अपने विचार हैं)

राज-काज

फिर उसी मोड़ पर

ग्यारह सितंबर 2001 को दुनिया के सबसे घातक और सुनियोजित आतंकी हमले ने अमेरिका के मर्म पर चोट की थी। दो बोइंग विमानों ने अमेरिकी अस्मिता की प्रतीक सबसे ऊंची 110 मंजिला बिल्डिंग ट्विन टावर को ध्वस्त कर दिया था। हमले में अल कायदा के आतंकियों की भूमिका मानते हुए अमेरिका व नाटो सदस्यों ने अफगानिस्तान पर हमला कर तालिबान को सत्ता से खदेड़ दिया था। लेकिन आतंक के खिलाफ बीस साल के युद्ध और अरबों डॉलर खर्च करके यदि कुछ हजार लड़ाके लाखों अफगान सैनिकों को परास्त करके अफगानिस्तान की सत्ता पर काबिज हो गये हैं तो यह अमेरिकी अभियान की नाकामी को ही दर्शाता है। यानी बीस साल पहले अफगानिस्तान जहां था, फिर वहीं पहुंच गया है। कहीं न कहीं अमेरिका अफगानिस्तान के मूल चरित्र को नहीं समझ पाया। फिर जिस पाकिस्तान को अमेरिका ने पाला-पोसा और जिसके भरोसे वह अफगानिस्तान में आतंकी गुटों के साथ लड़ रहा था, अंदरखाने पाकिस्तान उन्हें सींच भी रहा था। फिर अमेरिका ने अपनी मुहिम में शहरी जनमानस को तो शामिल किया, लेकिन रूढ़िवादी व परंपरागत सोच रखने वाले ग्रामीण अफगानियों का दिल वह नहीं जीत सका। ग्रामीण समाज को अपनी इस्लामिक प्रतिबद्धताओं के जरिये तालिबान सम्मोहित करता रहा। तालिबानियों ने पिछले दो दशक में ग्रामीण समाज में अपनी गहरी पैठ बनायी और कबीलों में यह संदेश देने का प्रयास किया कि हम देश को विदेशी आक्रांताओं से मुक्त करने की मुहिम में जुटे हैं। यही वजह है कि अमेरिका व नाटो सैनिकों की वापसी से पहले ही तालिबानियों ने ग्रामीण इलाकों से बढ़ते हुए सभी प्रांतों की राजधानियों के साथ ही देश की राजधानी काबुल पर भी कब्जा कर लिया। यहां अमेरिकी तंत्र की असफलता अफगान सेना के हथियार डालने के रूप में भी सामने आई। जिन लाखों अफगान सैनिकों को अमेरिका की देखरेख में प्रशिक्षण दिया गया था, वे कुछ हजार लड़ाकों के सामने बिछते चले गये। जिसे अमेरिका की सबसे बड़ी नाकामी माना जा रहा है।भले ही आज तालिबान बदला हुआ होने का दावा कर रहा हो, लेकिन धीरे-धीरे उसका पुराना चेहरा उजागर होने लगा है। अंतरिम सरकार का समावेशी न होना और महिलाओं को फिर से हाशिये में रखना उसकी शुरुआत है।

इंजीनियर्स - डे

इंजीनियर्स डे पर
अखबार में एक
इश्तहार आया
जो भाया
जरूरत है एक
ईमानदार इन्जीनियर की
जो देश के लिये कुछ कर सके
अपनी इन्जीनियर बिरादरी के लिए
हँसते हँसते खुद मर सके ।
दिन महिने साल
मैं हो गया बेहाल
मेरी जवानी से
बुढ़ापा टपकने लगा
इश्तहार के बदले
कोई नहीं आया
मुझे ये खटकने लगा ।
अन्ततः इंजीनियर्स डे पर
नहा धोकर
आदरणीय विश्वेश्वरैया जी की
तस्वीर के सम्मुख
अपने हाथ जोड़कर
मैंने खुद ही मरने का
प्लान बनाया ।
अपने पूर्वजों की की
तस्वीर के सम्मुख
मन ही मन
यै गुनगुनाया ।
हे यान्त्रकीय दाता
भाग्य विधाता
मुझे देश हित के लिए
अब कुछ करना है ।
ये समझो कि जीना नही
बस मरना है।
यान्त्रकीय दाता ने
जब सुनी मेरी बात
उनका दिल
हो गया आहत
बोले वर्मा
तू अपनी आत्महत्या
क्यों करना चाहता है
तू तो पहिले से ही
मरा हुआ है
अब और क्यों
मरना चहाता है ।
बस तबसे मैं जिन्दा हूँ
स इन्तज़ार में, कि
एक ईमानदार इन्जीनियर मरेगा
विश्वेश्वरैया जी जन्म लेंगे
देश को ईमानदारी का पाठ पढ़ाएंगे
देश को खुशहाल बनाएँगे
देश को खुशहाल बनाएँगे ।

ब्रजभूषण वर्मा
जगदलपुर